# बच्चों ने तैयार किया अपने गाँव का इतिहास!

प्रकाश कान्त



**चित्र-1:** *कक्षा छठवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'गाँवों का बसना' का एक चित्र।*

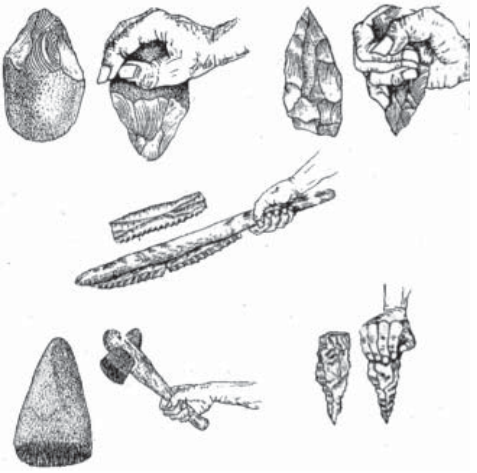
इतिहास के ही एक पाठ में बच्चों को एक काम करने को दिया गया था। उन्हें अपने आसपास पूछकर, उन परिवारों का पता लगाना था जो मूल रूप से उसी गाँव के निवासी थे। उन्होंने यह तो पता कर लिया लेकिन फिर मुझे लगा कि इस तरह के कुछ और सवालों के ज़रिए मानकुण्ड गाँव का छोटा-मोटा इतिहास तैयार हो सकता है। तब बच्चों ने समूहों में एवं अलग-अलग कुछ और प्रश्नों पर काम किया। जैसे, गाँव का नाम मानकुण्ड क्यों पड़ा? क्या गाँव शुरू से उसी जगह पर था जहाँ अभी है, या इधर-उधर बसा हुआ था? गाँव के सबसे पुराने परिवार कौन-कौन से हैं? ऐसे कौन-से परिवार हैं जो गाँव छोड़कर बाहर जाकर बस गए हैं? गाँव में हाट कब से लगने लगा? गाँव में सबसे पहला ट्रैक्टर किसके यहाँ आया? गाँव में बिजली कब आई? गाँव में पंचायत कब बनी? गाँव के मन्दिरों में से सबसे पुराना मन्दिर कौन-सा है? पंचायत का सबसे पहला सरपंच कौन था?

## स्थानीय इतिहास पता करना

इस तरह के और भी बहुत सारे सवाल थे जिनके उत्तर बच्चों को अपने घर-पड़ोस में पूछकर तैयार

करने थे। इस तरह के कुछ सवालों के जवाब पता करने की बात पाठ में भी की गई थी। बच्चों ने इन प्रश्नों के जवाब ढूँढने में काफी मेहनत की। बाद में कक्षा में इन पर सामूहिक चर्चा कर प्रामाणिक या अधिकतम सम्भव प्रामाणिक उत्तर तैयार किए गए। कुछ ऐसे भी उत्तर थे जिन्हें लेकर बच्चे एकमत नहीं थे। उनमें ही मतभेद थे। इस मामले में मैं खुद उनकी कोई मदद नहीं कर सकता था क्योंकि मैं बाहर का आदमी था। ऐसे में स्कूल के भृत्य मानसिंहजी की मदद लेनी पड़ी। थोड़ी मदद प्रधान अध्यापक मुकातीजी ने की। वे भी उसी गाँव के स्थाई निवासी थे। इन सबके कारण अन्ततः काफी हद तक प्रामाणिक जबाव तैयार हो गए। इनमें से कुछ तो काफी दिलचस्प थे। जानकारीवर्धक भी! जैसे, मानकुण्ड गाँव अभी जहाँ है पहले वहाँ नहीं था, बल्कि थोड़ा-सा नदी की तरफ था। या यह कि गाँव में पहले एक कुण्ड था। लोग वहाँ 'मान' उतारने आते थे। इसलिए गाँव का नाम 'मानकुण्ड' पड़ा। वगैरह!

एक बच्चे से, जिसकी लिखावट ज़्यादा साफ थी, इन प्रश्नोत्तरों को अच्छे से लिखवा लिया गया। और इस तरह गाँव का इतिहास तैयार हो गया। मेरी योजना इस इतिहास की साइक्लोस्टाइल प्रतियाँ तैयार कर, प्रत्येक बच्चे को एक-एक प्रति उपलब्ध करवा देने की थी। इसकी मैंने कक्षा में घोषणा भी कर दी थी। बच्चे अपने तैयार किए इतिहास को पुस्तिका के रूप में देखने के लिए काफी उत्साहित थे। लेकिन कुछ मेरी लापरवाही और कुछ विभागीय कामों का बोझ, इन सब में वह काम रह ही गया। क्लास के बच्चे बार-बार पूछते रहे कि उनका तैयार किया गया इतिहास कब छपेगा। मैं लगातार आश्वासन देता रहा। सोचता भी रहा कि बस, अब तो कर ही लूँगा। लेकिन नहीं कर पाया। आखिरकार, जिन बच्चों ने वह इतिहास तैयार किया था वे आठवीं क्लास पास करके स्कूल से विदा भी हो गए। वह पुस्तिका कभी



**चित्र-2:** *पत्थर के औज़ार और हथियार। रोमिला थापर की किताब 'प्राचीन भारत का इतिहास' से साभार।*



***चित्र-3:*** *कक्षा छठवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'शिकारी मानव' का एक चित्र।*

साइक्लोस्टाइल नहीं हो पाई। इससे भी ज़्यादा बुरा यह हुआ कि वह हस्तलिखित पाण्डुलिपि अपने साथ लिए-लिए घूमने में मुझसे कहीं खो गई! मैं अपनी ही नज़र में बच्चों का हमेशा के लिए अपराधी बन गया।

इस सामाजिक अध्ययन का इतिहास भी शिकारी मानव से शुरू होता था। लेकिन पाठ इस तरह से तैयार किए गए थे कि बच्चे उतने पुराने समय से अपना जुड़ाव महसूस कर सकें। साथ ही, वे यह भी जान पाएँ कि शुरू के मनुष्य का जीवन कितना संघर्षपूर्ण था – हिंसक जानवरों से बचाव और अपने लिए भोजन-पानी का इन्तज़ाम – दोनों स्तरों पर संघर्ष! इस सिलसिले में जब मैंने पत्थर के औज़ार और हथियारों का ज़िक्र किया तो उन्हें यकीन नहीं हुआ कि आखिर पत्थर के उन मामूली हथियार और औज़ारों से जंगली जानवरों का मुकाबला कैसे किया जाता होगा! लेकिन, जब उन्होंने पाया कि आज भी लड़ाई-झगड़ों में पत्थरों का इस्तेमाल होता है और इमली, जामुन, आम जैसे फल पत्थर मारकर ही तोड़े जाते हैं तब उन्हें कुछ-कुछ भरोसा होने लगा। दो-एक बच्चे पाठ में दिए गए पत्थर के औज़ार और हथियारों की तरह दिखते पत्थर ले आए। इसी सिलसिले में वे जान पाए कि साथ मिलकर रहना उस समय कितना ज़रूरी और फायदेमन्द था।

बच्चों ने इतिहास के पाठों को लेकर और भी कई अभ्यास किए। उन्होंने शिकारी मानव के पत्थर के औज़ार एवं हथियारों के चित्र देखे और वे उस तरह दिखने वाले पत्थरों के टुकड़े जब ले आए तब मुझे लगा

कि उनके इस प्रयास को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जाना चाहिए। सो, मैं उनकी लाई सामग्री को आधार बनाकर शिकारी मनुष्य के सामने मौजूद सम्भावित समस्याओं पर चर्चा करने लगा।

## इतिहास के विभिन्न आयाम

इन पाठों के साथ एक खास बात यह थी कि जो बातें मुझे ठीक से समझा पाना मुश्किल लग रही थीं, उन्हें बच्चों ने आसानी-से मान लिया। उन्हें लेकर उनके भीतर ज़्यादा खलबली नहीं मची जबकि मुझे लग रहा था कि काफी सवाल-जवाब पूछे जाएँगे। और शोर-शराबा होगा। ऐतिहासिक रूप से नगरों का विकास ऐसा ही एक मुद्दा था। लेकिन शायद अपने आसपास के शहर देखते रहने के कारण उन्हें ज़्यादा उलझाव महसूस नहीं हुआ। वे यह भी समझ गए कि पुराने समय के नगर या शहर आज के शहरों से कई मायनों में अलग थे। इस प्रसंग में यह भी चर्चा हुई कि तब के शहरों में आज जैसी कौन-कौन-सी चीज़ें नहीं रही होंगी! कुछ सामान्य चीज़ें तो सभी ने बताईं, जैसे बिजली, बस, मोटर साइकिल, हैण्डपम्प! साथ ही, तब के बाज़ार और दुकानों के फर्क भी उन्होंने बताए!

बच्चों ने इतिहास के पाठों में दिए नक्शों को भारत के राजनैतिक नक्शे के साथ रखकर बहुत सारी चीज़ें पता कीं। जैसे कि अगर नक्शे में पुराने जनपद दिए गए तो उन्होंने पता किया कि वे आज के भारत के किन-किन प्रान्तों में थे। या अजातशत्रु



**चित्र-4:** *कक्षा छठवीं के नागरिक शास्त्र खण्ड के पाठ 'हाट बाज़ार और मण्डी' का एक चित्र।*

का साम्राज्य भारत के किस प्रान्त में था। और यह भी कि आज से ढाई हज़ार साल पहले जो शहर थे, उनमें से कौन-कौन से शहर आज भी आसानी-से पहचाने जा सकते हैं। इसी तरह, उन्होंने पुराने समय के वैश्विक व्यापार को समझने के लिए एशिया और विश्व के नक्शे को टटोला।

उनका यह सब करना और इस दौरान आपस में ज़ोर-ज़ोर से बातचीते करना ही नहीं बल्कि झगड़ना भी कक्षा को खास तरह से जीवन्त बना देता था। एक खास तरह की उत्तेजना और विस्फोटक उत्साह! इस सब में अगर मैं उनसे कोई सवाल पूछ लेता और उसका जवाब उन्हें उस समय याद नहीं आ रहा होता तो उनकी तरफ से दनदनाता सामूहिक वाक्य आता, "हमारे नी मालम! तम बताओ।" (हमें नहीं पता! आप बताइए।) एक शिक्षक को इन सब में किस तरह की रचनात्मक खुशी हो सकती है, मैं बच्चों को यह सब करते हुए देखकर ही महसूस कर पा रहा था। मैं दूसरों के बारे में तो नहीं जानता लेकिन अपने तईं ज़रूर कह सकता हूँ कि पढ़ने-पढ़ाने की खास तरह की रचनात्मक खुशी एक शिक्षक को शायद ऐसी जीवन्त कक्षाओं में ही हासिल हो पाती है। यह उसे अपने काम को और बेहतर बनाने में मदद करती है। बच्चों को यह सब करते देख मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। दोबारा छात्र बनने और बने रहने का सिलसिला! इस सब में पीरियड कब खत्म हो जाता, पता ही नहीं चलता।

खेती, पशुपालन, गाँव का बसना जैसे पाठ बच्चों के लिए एक तरह से परिचित संसार का हिस्सा थे क्योंकि वे भी गाँव में ही रहते थे। इसलिए शायद उन सब से तार जल्दी जुड़ गए। यह मेरा सामान्य अनुभव था कि बच्चे अपने परिचित संसार के आसपास की या जुड़ी हुई चीज़ों से जल्दी जुड़ते हैं। मेरी कक्षा के अधिकांश बच्चों के पास खेती का अपना अनुभव था। उनके पास भी, जिनकी स्वयं की कृषि भूमि नहीं थी परन्तु उनके परिवार के लोग कृषि मज़दूरी करते थे। बच्चे खेती के बारे में सिलसिलेवार सब कुछ जानते थे। हर तरह की फसल के बारे में - लड़कियाँ तक! क्योंकि वे भी खेती-किसानी के कामों में अपने परिवार के साथ शामिल रहा करती थीं। सो, खेती-किसानी का अनुभव बच्चों का अपना जिया हुआ अनुभव-संसार था।

इसके उलट, मेरे पास सिर्फ मोटी-मोटी जानकारियाँ थीं, अनुभव नहीं! खेती-किसानी, फसल बिगड़ने-सुधरने वगैरह के बारे में उन्हें ज़्यादा और सही पता होता था। मेरे पास इस बारे में जो कुछ होता था, वह सिर्फ सुना-सुनाया था। इसीलिए पढ़ाते समय या कक्षा में अनौपचारिक बातचीत के दौरान गलत जानकारी दे देता तो

बच्चे तुरन्त टोक देते। "ये ल्लो, तमारे इत्तो बी नी मालम!" कोई एक धीमा स्वर उभरता। हल्की-सी सामूहिक हँसी के बीच! मुझे अपनी बात ठीक करनी पड़ती। वैसे मेरे स्कूल के अधिकांश शिक्षक किसान थे। लगभग सभी के घर खेती थी। उनकी आपसी बातचीत का एक बड़ा हिस्सा खेती ही होता था। मैं खेती के बारे में जो थोड़ा-बहुत जानता था, वह सब उन्हीं की बातों के आधार पर। इसके अलावा खेती-किसानी से मेरा लगाव यथार्थवादी न होकर बहुत कुछ रोमांटिक किस्म का था। लगभग फिल्मी टाइप का! जबकि बच्चे इस मामले में मज़बूत ज़मीन पर खड़े थे और मुझसे कई गुना ज़्यादा जानते थे। आज की खेती की मुश्किलों के बारे में भी। इसके बावजूद, उन्होंने जब खेती की शुरुआत के बारे में पढ़ा तब थोड़े-से चौंके! उनके लिए एकदम से भरोसा कर पाना आसान नहीं रहा कि मनुष्य ने खेती करना इतनी लम्बी प्रक्रिया में सीखा होगा! इतनी मुश्किलों से!

## लिपि और भाषा के तिलिस्म

इतिहास के पाठों में कहीं-कहीं पुरानी लिपि और भाषाओं का ज़िक्र आया था। यह मेरे लिए इतिहास जानने के अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम पर बात करने का खास मौका था। मैं इसके पहले बच्चों को इतना तो बता ही चुका था कि आजकल हम जो भाषाएँ बोलते-सुनते हैं, उनमें से ज़्यादातर हज़ार-सवा हज़ार साल इधर की हैं। उसके पहले अन्य भाषाएँ बोली जाती थीं और उनकी लिखाई भी अलग तरह की थी। आज भी दुनिया में सैकड़ों लिपियाँ और हज़ारों भाषाएँ प्रचलित हैं। सिन्धु घाटी की लिखाई या लिपि वाले प्रसंग में उन्हें यह जानकर हैरानी भी हुई और अविश्वास भी कि उस समय की लिपि को मैं, यानी कि उनके शिक्षक भी पढ़ नहीं सकते! यह शिक्षक के सर्वज्ञ होने की छवि का ध्वंस था। शिक्षक के ज्ञान की सीमाओं की घोषणा!

बहरहाल, इसी के साथ उन्होंने यह भी जाना कि लिखित सामग्री को पढ़ने-समझने के पहले उस लिपि को पढ़ना आना ज़रूरी है जिसमें वह सामग्री लिखी है। उसके बाद उस भाषा को जानना! ज़रूरी नहीं कि लिपि पढ़ लेने से भाषा भी समझ में आ ही जाए। एक लिपि में कई भाषाएँ और एक भाषा कई लिपियों में लिखी जा सकती है, यह बात उन्हें देर से समझ में आई। काफी मशक्कत के बाद! हालाँकि, यह समझने में उन्हें ज़्यादा दिक्कत नहीं हुई कि मनुष्य ने भाषा पहले सीखी, उसे लिखना बाद में! यह बात समझ पाना उनके घर के बच्चों के उदाहरण के ज़रिए आसान रहा। यह बात तो खैर उन्होंने खुद ही मान ली कि उनके साथ भी यही हुआ था। वे भी इसी तरह से सीखे हैं।



***चित्र-5:*** *कक्षा छठवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'राजा अशोक' में दिया गया अशोक के शिलालेख का एक चित्र।*

सिन्धु घाटी की लिखाई को अभी तक न पढ़े जा सकने की समस्या को मैंने कई तरह से स्पष्ट करने की कोशिश की। इस वजह से मेरे लिए कुछ और लिपियों की चर्चा करने की गुंजाइश भी निकल आई। बच्चे जान पाए कि देवनागरी और रोमन (जिनमें उनकी किताबों की संस्कृत, हिन्दी और अँग्रेज़ी की पुस्तकें लिखी गई हैं) के अलावा भी कई लिपियाँ हैं, जिन्हें पढ़ने के लिए पर्याप्त अभ्यास की ज़रूरत होती है। कुछ लिपियाँ अगर बाएँ से दाएँ लिखी जाती हैं तो कुछ दाएँ से बाएँ! कुछ ऊपर से नीचे! लिपियों के फर्क को समझाने के लिए छठी कक्षा के इतिहास खण्ड में छपे 'अशोक के शिलालेख' के चित्र का इस्तेमाल किया गया। नोटों पर अलग-अलग भाषाओं में छपे नोटों के मान की बात की। बच्चों के लिए यह काफी रोचक रहा। रोमांचक भी!

---

**प्रकाश कान्त:** हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश, संस्मरण – एक शहर देवास, कवि नईम और मैं, और फिल्म पर एक पुस्तक – हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

**सभी चित्र:** *एकलव्य* द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।